निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय

श्रमण निर्ग्रन्थ धर्म का परिचय

ब्राह्मण या वैदिक धर्मानुयायी संप्रदाय का विरोधी संप्रदाय श्रमण संप्रदाय कहलाता है, जो भारत में सम्भवतः वैदिक संप्रदाय का प्रवेश होनेके पहले ही किसी न किसी रूप में और किसी न किसी प्रदेश में अवश्य मौजूद था। श्रमण सम्प्रदाय की शाखाएँ और प्रतिशाखाएँ अनेक थीं, जिनमें सांख्य, जैन, बौद्ध, आजीवक आदि नाम सुविदित हैं। पुरानी अनेक श्रमण संप्रदाय की शाखाएँ एवं प्रतिशाखाएँ जो पहले तो वैदिक संप्रदाय की विरोधिनी रहीं पर वे एक या दूसरे कारण से धीरे धीरे बिलकुल वैदिक-संप्रदाय में घुलमिल गयी हैं। उदाहरण के तौर पर हम वैष्णव और शैव-संप्रदाय का सूचन कर सकते हैं। पुराने वैष्णव और शैव आगम केवल वैदिक-संप्रदाय से भिन्न ही न थे पर उसका विरोध भी करते थे। और इस कारण से वैदिक संप्रदाय के समर्थक आचार्य भी पुराने वैष्णव और शैव आगमों को वेदविरोधी मानकर उन्हें वेदबाह्य मानते थे। पर आज हम देख सकते हैं कि वे ही वैष्णव और शैव संप्रदाय तथा उनकी अनेक शाखाएँ बिलकुल वैदिक सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गई हैं। यही स्थिति सांख्य संप्रदाय की है जो पहले अवैदिक माना जाता था, पर आज वैदिक माना जाता है। ऐसा होते हुए भी कुछ श्रमण संप्रदाय अभी ऐसे हैं जो खुद अपने को अ-वैदिक ही मानते-मनवाते हैं और वैदिक विद्वान् भी उन सम्प्रदायों को अवैदिक ही मानते आए हैं। ऐसा क्यों हुआ ? यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। पर इसकी विशेष चर्चा का यह स्थान नहीं है। यहाँ तो इतना ही प्रस्तुत है कि पहले से अभी तक बिलकुल अवैदिक रहने और कहलाने वाले संप्रदाय अभी जीवित हैं। इन सम्प्रदायों में जैन और बौद्ध मुख्य हैं। यद्यपि इस जगह आजीवक संप्रदाय का भी नाम दिया जा सकता है, पर उसका साहित्य और इतिहास स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने के कारण तथा सातवीं सदी से इधर उसका प्रवाह अन्य नामों और स्वरूप में बदल जाने के कारण हम यहाँ उसका निर्देश नहीं करते हैं।

जैन और बौद्ध संप्रदाय अनेक परिवर्तनशील परिस्थितियों में से गुजरते हुए भी वैसे ही जीवित हैं जैसे वैदिक-संप्रदाय तथा जरथोस्तू, यहूदी, क्रिश्चियन आदि धर्ममत जीवित हैं। जैन-मत का पूरा इतिहास तो अनेक पुस्तकों में ही लिखा जा सकता है। इस जगह हमारा उद्देश्य जैन-संप्रदाय के प्राचीन स्वरूप पर थोड़ा सा ऐतिहासिक प्रकाश डालना मात्र है। प्राचीन से हमारा अभिप्राय स्थूलरूप में भ० पार्श्वनाथ (ई० स० पूर्व ८००) के समय से लेकर करीब-करीब अशोक के समय तक का है।

प्राचीन शब्द से ऊपर सूचित करीब पांच सौ वर्ष दरम्यान भी निर्ग्रन्थ परम्परा के इतिहास में समावेश पाने वाली सब बातों पर विचार करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है क्योंकि यह काम भी इस छोटे से लेख के द्वारा पूरा नहीं हो सकता। यहाँ हम जैन-संप्रदाय से संबन्ध रखनेवाली इनी-गिनी उन्हीं बातों पर विचार करेंगे जो बौद्ध पिटकों में एक या दूसरे रूप में मिलती हैं, और जिनका समर्थन किसी न किसी रूप में प्राचीन निर्ग्रन्थ आगमों से भी होता है।

श्रमण संप्रदाय की सामान्य और संक्षिप्त पहचान यह है कि वह न तो अपौरुषेय-अनादिरूप से या ईश्वर रचितरूप से वेदों का प्रामाण्य ही मानता है और न ब्राह्मणवर्ग का जातीय या पुरोहित के नाते गुरुपद स्वीकार करता है, जैसा कि वैदिक-संप्रदाय वेदों और ब्राह्मण पुरोहितों के बारे में मानता व स्वीकार करता है। सभी श्रमण-संप्रदाय अपने-अपने सम्प्रदाय के पुरस्कर्तारूप से किसी न किसी योग्यतम पुरुष को मानकर उसके वचनों को ही अन्तिम प्रमाण मानते हैं और जाति की अपेक्षा गुण की प्रतिष्ठा करते हुए संन्यासी या गृहत्यागी वर्ग का ही गुरुपद स्वीकार करते हैं।

प्राचीनकाल से श्रमण-सम्प्रदायकी सभी शाखा-प्रतिशाखाओं में गुरु या त्यागी वर्ग के लिए निम्नलिखित शब्द साधारण रूप से प्रयुक्त होते थे। श्रमण, भिक्षु, अनगार, यति, साधु, तपस्वी, परिव्राजक, अर्हत्, जिन, तीर्थंकर आदि। बौद्ध और आजीवक आदि संप्रदायों की तरह जैन-संप्रदाय भी अपने गुरुवर्ग के लिए उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग पहले से ही करता आया है तथापि एक शब्द ऐसा है कि जिसका प्रयोग जैन संप्रदाय ही अपने सारे इतिहास में पहले से आज तक अपने गुरुवर्ग के लिए करता आया है। यह शब्द है "निर्ग्रन्थ" (निग्गन्थ)[1]। जैन आगमों के

१. आचारांग १. ३. १. १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसार निग्गन्थ और बौद्धपिटकों के अनुसार निग्गंठ। जहाँ तक हम जानते हैं, ऐतिहासिक साधनों के आधार पर कह सकते हैं, कि जैन-परंपरा को छोड़कर और किसी परंपरा में गुरुवर्ग के लिए निर्ग्रन्थ शब्द सुप्रचलित और रूढ हुआ नहीं मिलता। इसी कारण से जैन शास्त्र "निग्गंथ पावयण" अर्थात् 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' कहा गया है[२]। किसी अन्य-संप्रदाय का शास्त्र निर्ग्रन्थ प्रवचन नहीं कहा जाता।

स्व-पर मान्यताएँ और ऐतिहासिक दृष्टि

प्रत्येक जाति और सम्प्रदाय वाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों और विषयों के सम्बन्ध में अमुक-अमुक मान्यताएँ रखते हुए देखे जाते हैं। वे मान्यताएँ उनके दिलों में इतनी गहरी जड़ जमाए हुए होती हैं कि उन्हें अपनी वैसी मान्यताओं के बारे में कोई सन्देह तक नहीं होता। अगर कोई सन्देह प्रकट करें तो उन्हें जान जाने से भी अधिक चोट आती है। सचमुच उन मान्यताओं में अनेक मान्यताएँ बिलकुल सही होती हैं, भले वैसी मान्यताओं के धारण करनेवाले लोग उनका समर्थन कर भी न सकें और समर्थन के साधन मौजूद होते हुए भी उनका उपयोग करना न जानें। ऐसी मान्यताओं को हम अक्षरशः मानकर अपने तईं संतोष धारण कर सकते हैं, तथा उनके द्वारा हम अपना जीवनविकास भी शायद कर सकते हैं। उदाहरणार्थ जैन लोग ज्ञातपुत्र महावीर के बारे में और बौद्ध लोग तथागत बुद्ध के बारे में अपने-अपने परंपरागत संस्कारों के तथा मान्यताओं के आधार पर बिलकुल ऐतिहासिक तथ्योंकी जाँच बिना किए भी उनकी भक्ति-उपासना तथा उनकी जीवन-उत्क्रांति के अनुसरण के द्वारा अपना आध्यात्मिक विकास साध सकते हैं। फिर भी जब दूसरों के सामने अपनी मान्यताओं के रखने का तथा अपने विचारों को सही साबित करने का प्रश्न उपस्थित होता है तब मात्र इतना कहने से काम नहीं चलता कि 'आप मेरे कथन को मान लीजिए, मुझपर भरोसा रखिए'। हमें दूसरों के सम्मुख अपनी बातें या मान्यताएँ प्रतीतिकर रूप से या विश्वस्त रूप से रखना हो तो इसका सीधा-सादा और सर्वमान्य तरीका यही है कि हम ऐतिहासिक दृष्टि के द्वारा उनके सम्मुख अपनी बातों का तथ्य साबित करें। कोई भी भिन्न अभिप्राय रखनेवाला ऐतिहासिक व्यक्ति तथ्य का कायल हो ही जाता है। यही न्याय खुद हमारे अपने विषय में भी लागू होता है। दूसरों के बारे में हमारा कैसा भी पूर्वग्रह क्यों न हो पर जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से अपने पूर्वग्रह की जाँच करेंगे तो हम सत्य-पथ पर सरलता से आ सकेंगे। अज्ञान, भ्रम और वहम जो भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों में लम्बी-चौड़ी खाई पैदा करते हैं अर्थात् उनके

२. भगवती ६. ६. ३८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिलों को एक दूसरे से दूर रखते हैं उनका सरलता से नाश करके दिलों की खाई पाटने का एक मात्र साधन ऐतिहासिक दृष्टि का उपयोग है। इस कारण से यहाँ हम निर्ग्रन्थ संप्रदाय से संबंध रखने वाली कुछ बातों की ऐतिहासिक दृष्टि से जांच करके उनका ऐतिहासिक मूल्य प्रकट करना चाहते हैं।

जिन इने-गिने मुद्दों और प्रश्नों के बारे में जैन-सम्प्रदाय को पहले कभी संदेह न था उन प्रश्नों के बारे में विदेशी विद्वानों की रायने केवल औरों के दिल में ही नहीं बल्कि परंपरागत जैन संस्कारवालों के दिल में भी थोड़ा बहुत संदेह पैदा कर दिया था। यहाँ हमें यह विचार करना चाहिए कि आखिर में ऐसा होता क्यों है? विदेशी विद्वान् एक अंत पर थे तो हम दूसरे अंत पर थे। विदेशी विद्वानों की संशोधक वृत्ति और सत्य दृष्टि ने नवयुग पर इतना प्रभाव जमा दिया था कि कोई उनकी राय के खिलाफ बलपूर्वक और दलील के साथ अपना मत प्रतिपादित नहीं कर सकता था। हमारे पास अपनी मान्यता के पोषक अकाट्य ऐतिहासिक साधन होते हुए भी हम उन साधनों का अपने पक्ष में यथार्थ रूप से पूरा उपयोग करना जानते न थे। इसलिए हमारे सामने शुरू में दो ही रास्ते थे। या तो हम विदेशी विद्वानों की राय को बिना दलील किए झूठ कह कर अमान्य करें, या अपने पक्ष की दलील के अभाव से ऐतिहासिकों की वैज्ञानिक दृष्टि के प्रभाव में आकर हम अपनी सत्य बात को भी नासमझी से छोड़कर विदेशी विद्वानों की खोजों को मान लें। हमारे पास परम्परा के संस्कारों के अलावा अपनी-अपनी मान्यता के समर्थक अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद थे। हम केवल उनका उपयोग करना नहीं जानते थे। जब कि विदेशी विद्वान् ऐतिहासिक साधनों का उपयोग करना तो जानते थे पर शुरू-शुरू में उनके पास ऐतिहासिक साधन पूरे न थे। इसलिए अधूरे साधनों से वे किसी बात पर एक निर्णय प्रकट करते थे तो हम साधनों के होते हुए भी उनका उपयोग बिना किए ही बिलकुल उस बात पर विरोधी निर्णय रखते थे। इस तरह एक ही बात पर या एक ही मुद्दे पर दो परस्पर विरोधी निर्णयों के सामने आने से नवयुग का व्यक्ति अपने आप संदेहशील हो जाए तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हम उपर्युक्त विचार को एक आध उदाहरण से समझाने की चेष्टा करते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि का मूल्याङ्कन

जैन-परम्परा, बौद्ध परम्परा से पुरानी है और उसके अंतिम पुरस्कर्ता महावीर बुद्ध से भिन्न व्यक्ति हैं इस विषय में किसी भी जैन व्यक्ति को कभी संदेह न था। ऐसी सत्य और असंदिग्ध वस्तु के खिलाफ भी विदेशी विद्वानों की रायें प्रकट होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगीं। शुरू में प्रो० लासेन ने[3] लिखा कि 'बुद्ध और महावीर एक ही व्यक्ति हैं क्योंकि जैन और बुद्ध-परम्परा की मान्यताओं में अनेकविध समानता है।' थोड़े वर्षों के बाद अधिक साधनों की उपलब्धि तथा अध्ययन के बल पर प्रो० वेबर[4] आदि विद्वानों ने यह मत प्रकट किया कि 'जैनधर्म बौद्धधर्म की एक शाखा है। वह उससे स्वतंत्र नहीं है।' आगे जाकर विशेष साधनों की उपलब्धि और विशेष परीक्षा के बल पर प्रो० याकोबी ने[5] उपर्युक्त दोनों मतों का निराकरण करके यह स्थापित किया कि 'जैन और बौद्ध सम्प्रदाय दोनों स्वतन्त्र हैं इतना ही नहीं बल्कि जैन सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय से पुराना भी है और ज्ञातपुत्र महावीर तो उस सम्प्रदाय के अंतिम पुरस्कर्ता मात्र हैं।' करीब सवा सौ वर्ष जितने परिमित काल में एक ही मुद्दे पर ऐतिहासिकों की राय बदलती रही; पर इस बीच में किसी जैन ने अपनी यथार्थ बात को भी उस ऐतिहासिक ढंग से दुनिया के समक्ष न रखा जिस ढंग से प्रो० याकोबी ने अंत में रखा। याकोबी के निकट अधिकतर साधन वे ही थे जो प्रत्येक जैन विद्वान् के पास अनायास ही उपलब्ध रहते हैं। याकोबी ने केवल यही किया कि जैन ग्रन्थों में आने वाली हकीकतों का बौद्ध आदि वाङ्मय में वर्णित हकीकतों के साथ मिलान करके ऐतिहासिक दृष्टि से परीक्षा की और अंत में जैनसम्प्रदाय की मान्यता की सचाई पर मुहर लगा दी। जो बात हम जैन लोग मानते थे उसमें याकोबी ने कोई वृद्धि नहीं की फिर भी जैन सम्प्रदाय की बौद्ध सम्प्रदाय से प्राचीनता और भगवान् महावीर का तथागत बुद्ध की अपेक्षा स्वतन्त्र व्यक्तित्व इन दो मुद्दों पर हमारे साम्प्रदायिक जैन विद्वानों के अभिप्राय का वह सार्वजनिक मूल्य नहीं है जो याकोबी के अभिप्राय का है। पाठक इस अंतर का रहस्य स्वयमेव समझ सकते हैं कि याकोबी उपलब्ध ऐतिहासिक साधनों के बलाबल की परीक्षा करके कहते हैं जब कि साम्प्रदायिक जैन विद्वान् केवल साम्प्रदायिक मान्यता को किसी भी प्रकार की परीक्षा बिना किए ही प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक मानस परीक्षित सत्य को जितना मानता है उतना अपरीक्षित सत्य को नहीं मानता। इसलिए हम इस लेख में निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से संबन्ध रखने वाली कुछ बातों पर ऐतिहासिक परीक्षा के द्वारा प्रकाश डालना चाहते हैं, जिससे पाठक यह जान सकेंगे कि निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के बारे में जो मन्तव्य जैन सम्प्रदाय में प्रचलित हैं वे कहाँ तक सत्य हैं और उन्हें कितना ऐतिहासिक आधार है।

---

३. S. B. E. Vol. 22 Introduction P. 19
४. वही P. 18
५. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमिक साहित्य का ऐतिहासिक स्थान

निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के आचार और तत्त्वज्ञान से संबन्ध रखने वाले जिन मुद्दों पर हम ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना चाहते हैं वे मुद्दे जैन आगमिक साहित्य में ज्यों के त्यों मिल जाते हैं तो फिर उसी आगमिक साहित्य के आधार पर उन्हें यथार्थ मानकर क्यों संतोष धारण न किया जाए? यह प्रश्न किसी भी श्रद्धालु जैन के दिल में पैदा हो सकता है। इसलिये यहाँ यह भी बतलाना जरूरी हो जाता है कि हम जैन आगमिक साहित्य में कही हुई बातों की जाँच-पड़ताल क्यों करते हैं? हमारे सम्मुख मुख्यतया दो वर्ग मौजूद हैं—एक तो ऐसा है जो मात्र प्राचीन आगमों को ही नहीं पर उनकी टीका-अनुटीका आदि बाद के साहित्य को भी अक्षरशः सर्वज्ञप्रणीत या तत्सदृश मानकर ही अपनी राय को बनाता है। दूसरा वर्ग वह है जो या तो आगमों को और बाद की व्याख्याओं को अंशतः मानता है या बिलकुल नहीं मानता है। ऐसी दशा में आगमिक साहित्य के आधार पर निर्विवाद रूप से सब के सम्मुख कोई बात रखनी हो तो यह जरूरी हो जाता है कि प्राचीन आगमों और उनकी व्याख्याओं में कही हुई बातों की यथार्थता बाहरी साधनों से जाँची जाए। अगर बाहरी साधन आगम-वर्णित वस्तुओं का समर्थन करता है तो मानना पड़ेगा कि आगमभाग अवश्य प्रमाणभूत है। बाहरी साधनों से पूरा समर्थन पानेवाले आगमभागों को फिर हम एक या दूसरे कारण से कृत्रिम कहकर फेंक नहीं दे सकते। इस तरह ऐतिहासिक परीक्षा जहाँ एक ओर आगमिक साहित्य को अर्वाचीन या कृत्रिम कहकर बिलकुल नहीं मानने वाले को उसका सापेक्ष प्रामाण्य मानने के लिए बाधित करती है वहाँ दूसरी ओर वह परीक्षा आगम साहित्य को बिलकुल सर्वज्ञप्रणीत मान कर ज्यों का त्यों मानने वाले को उसका प्रामाण्य विवेकपूर्वक मानने की भी शिक्षा देती है। अब हम देखेंगे कि ऐसा बाहरी साधन कौन है जो निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के आगम कथित प्राचीन स्वरूप का सीधा प्रबल समर्थन करता हो।

जैनागम और बौद्धागम का संबन्ध

यद्यपि प्राचीन बौद्धपिटक और प्राचीन वैदिक-पौराणिक साहित्य ये दोनों प्रस्तुत परीक्षा में सहायकारी हैं, तो भी आगम कथित निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के साथ जितना और जैसा सीधा संबन्ध बौद्ध पिटकों का है उतना और वैसा संबंध वैदिक या पौराणिक साहित्य का नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

एक तो—जैन संप्रदाय और बौद्ध सम्प्रदाय—दोनों ही श्रमण संप्रदाय हैं। अतएव इनका संबंध भ्रातृभाव जैसा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा—बौद्ध संप्रदाय के स्थापक गौतम बुद्ध तथा निर्ग्रन्थ संप्रदाय के अन्तिम-पुरस्कर्ता ज्ञातपुत्र महावीर दोनों समकालीन थे। वे केवल समकालीन ही नहीं बल्कि समान या एक ही क्षेत्र में जीवन-यापन करनेवाले रहे। दोनों की प्रवृत्ति का धाम एक प्रदेश ही नहीं बल्कि एक ही शहर, एक ही मुहल्ला, और एक ही कुटुम्ब भी रहा। दोनों के अनुयायी भी आपस में मिलते और अपने-अपने पूज्य पुरुष के उपदेशों तथा आचारों पर मित्रभाव से या प्रतिस्पर्द्धिभाव से चर्चा भी करते थे। इतना ही नहीं बल्कि अनेक अनुयायी ऐसे भी हुए जो दोनों महापुरुषों को समान भाव से मानते थे। कुछ ऐसे भी अनुयायी थे जो पहले किसी एक के अनुयायी रहे पर बाद में दूसरे के अनुयायी हुए, मानों महावीर और बुद्ध के अनुयायी ऐसे पड़ौसी या ऐसे कुटुम्बी थे जिनका सामाजिक संबन्ध बहुत निकट का था। कहना तो ऐसा चाहिए कि मानों एक ही कुटुम्ब के अनेक सदस्य भिन्न-भिन्न मान्यताएँ रखते थे जैसे आज भी देखे जाते हैं।[६]

तीसरा — निर्ग्रन्थ संप्रदाय की अनेक बातों का बुद्ध ने तथा उनके समकालीन शिष्यों ने आँखों देखा-सा वर्णन किया है, भले ही वह खण्डनदृष्टि से किया हो या प्रासंगिक रूप से।[७]

बौद्ध-पिटकों के जिस-जिस भाग में निर्ग्रन्थ संप्रदाय से संबन्ध रखनेवाली बातों का निर्देश है वह सब भाग खुद बुद्ध का साक्षात् शब्द है ऐसा माना नहीं जा सकता, फिर भी ऐसे भागों में अमुक अंश ऐसा अवश्य है जो बुद्ध के या उनके समकालीन शिष्यों के या तो शब्द हैं या उनके निजी भावों के संग्रहमात्र हैं। आगे बौद्ध भिक्षुओं ने जो निर्ग्रन्थ संप्रदाय के भिन्न-भिन्न आचारों या मंतव्यों पर टीका या समालोचना जारी रखी है वह दर असल कोई नई वस्तु न होकर तथागत बुद्ध की निर्ग्रन्थ आचार-विचार के प्रति जो दृष्टि थी उसका नाना रूप में विस्तार मात्र है। खुद बुद्ध द्वारा की हुई निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय की समालोचना समकालीन और उत्तर-कालीन भिक्षुओं के सामने न होती तो वे निर्ग्रन्थ संप्रदाय के भिन्न-भिन्न पहलुओं के ऊपर पुनरुक्ति का और पिष्टपेषण का भय बिना रखे इतना अधिक विस्तार चालू न रखते। उपलब्ध बौद्ध पिटक का बहुत बड़ा हिस्सा अशोक के समय तक में सुनिश्चित और स्थिर हो गया माना जाता है। बुद्ध के जीवन से लेकर अशोक के समय तक के करीब ढाई सौ वर्ष में बौद्ध पिटकों का उपलब्ध स्वरूप और परिमाण रचित, ग्रथित और संकलित हुआ है। इन ढाई सौ वर्षों के दरम्यान नए-नए

---

६ उपासकदशांग अ० ८। इत्यादि.

७ मज्झिमनिकाय—सुत्त १४, ५६। दीघनिकाय सुत्त २९, ३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तर आते गए हैं। पर उनमें बुद्ध के समकालीन पुराने स्तर—चाहे भाषा और रचना के परिवर्तन के साथ ही सही—भी अवश्य हैं। आगे के स्तर बहुधा पुराने स्तरों के ढाँचे और पुराने स्तरों के विषयों पर ही बनते और बढ़ते गए हैं। इसलिए बौद्ध पिटकों में पाया जानेवाला निर्ग्रन्थ संप्रदाय के आचार-विचार का निर्देश ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत मूल्यवान् है। फिर हम जब बौद्ध फिरकागत निर्ग्रन्थ संप्रदाय के निर्देशों को खुद निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप से उपलब्ध आगमिक साहित्य के निर्देशों के साथ शब्द और भाव की दृष्टि से मिलाते हैं तो इसमें संदेह नहीं रह जाता कि दोनों निर्देश प्रमाणभूत हैं; भले ही दोनों बाजुओं में वादि-प्रतिवादि भाव रहा हो। जैसे बौद्ध पिटकों की रचना और संकलना की स्थिति है करीब-करीब वैसी ही स्थिति प्राचीन निर्ग्रन्थ आगमों की है।

बुद्ध और महावीर

बुद्ध और महावीर समकालीन थे। दोनों श्रमण संप्रदाय के समर्थक थे, फिर भी दोनों का अंतर बिना जाने हम किसी नतीजे पर पहुँच नहीं सकते। पहला अंतर तो यह है कि बुद्धने महाभिनिष्क्रमण से लेकर अपना नया मार्ग—धर्मचक्र-प्रवर्तन किया, तब तक के छः वर्षों में उस समय प्रचलित भिन्न-भिन्न तपस्वी और योगी संप्रदायों को एक-एक करके स्वीकार-परित्याग किया। और अन्त में अपने अनुभव के बल पर नया ही मार्ग प्रस्थापित किया। जब कि महावीर को कुल परंपरा से जो धर्ममार्ग प्राप्त था उसको स्वीकार करके वे आगे बढ़े और उस कुलधर्म में अपनी सूझ और शक्ति के अनुसार सुधार या शुद्धि की। एक का मार्ग पुराने पंथों के त्याग के बाद नया धर्म-स्थापन था तो दूसरे का मार्ग कुलधर्म का संशोधन मात्र था। इसीलिए हम देखते हैं कि बुद्ध जगह-जगह पूर्व स्वीकृत और अस्वीकृत अनेक पंथों की समालोचना करते हैं और कहते हैं कि अमुक पंथ का अमुक नायक अमुक मानता है, दूसरा अमुक मानता है पर मैं इसमें सम्मत नहीं, मैं तो ऐसा मानता हूँ इत्यादि[८] बुद्ध ने पिटक भर में ऐसा कहीं नहीं कहा कि मैं जो कहता हूँ वह मात्र पुराना है, मैं तो उसका प्रचारक मात्र हूँ। बुद्ध के सारे कथन के पीछे एक ही भाव है और वह यह है कि मेरा मार्ग खुद अपनी खोज का फल है। जब कि महावीर ऐसा नहीं कहते। क्योंकि एक बार पार्श्वापत्यिकों ने महावीर से कुछ प्रश्न किए तो उन्होंने पार्श्वापत्यिकों को पार्श्वनाथ के ही वचन की साक्षी देकर अपने पक्ष में किया है।[९] यही संभव है कि बुद्ध ने अपने मत के साथ दूसरे

८. मज्झिम० ५६। अंगुत्तर Vol. I. P. 206 Vol. III P. 383

९. भगवती ५. ६. २२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी समकालीन या पूर्वकालीन मत का समन्वय नहीं किया है। उन्होंने केवल अपने मत की विशेषताओं को दिखाया है। जबकि महावीर ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने पार्श्वनाथ के तत्कालीन संप्रदाय के अनुयायियों के साथ अपने सुधार का या परिवर्तनों का समन्वय किया है[१०]। इसलिए महावीर का मार्ग पार्श्वनाथ के संप्रदाय के साथ उनकी समन्वयवृत्ति का सूचक है।

निर्ग्रन्थ-परंपरा का बुद्ध पर प्रभाव

बुद्ध और महावीर के बीच लक्ष्य देने योग्य दूसरा अंतर जीवनकाल का है। बुद्ध ८० वर्ष के होकर निर्वाण को प्राप्त हुए जब कि महावीर ७२ वर्ष के होकर। अब तो यह साबित-सा हो गया है कि बुद्ध का निर्वाण पहले और महावीर का पीछे हुआ है।[११] इस तरह महावीर की अपेक्षा बुद्ध कुछ वृद्ध अवश्य थे। इतना ही नहीं पर महावीर ने स्वतंत्र रूप से धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया इसके पहले ही बुद्ध ने अपना मार्ग स्थापित करना शुरू कर दिया था। बुद्ध को अपने मार्ग में नए-नए अनुयायियों को जुटा कर ही बल बढ़ाना था, जब कि महावीर को नए अनुयायियों को बनाने के सिवाय पार्श्व के पुराने अनुयायियों को भी अपने प्रभाव में और आसपास जमाए रखना था। तत्कालीन अन्य सब पन्थों के मंतव्यों की पूरी चिकित्सा या खंडन किए बिना बुद्ध अपनी संघ-रचना में सफल नहीं हो सकते थे। जब कि महावीर का प्रश्न कुछ निराला था। क्योंकि अपने चारित्र व तेजोबल से पार्श्वनाथ के तत्कालीन अनुयायियों का मन जीत लेने मात्र से वे महावीर के अनुयायी बन ही जाते थे, इसलिए नए-नए अनुयायियों की भरती का सवाल उनके सामने इतना तीव्र न था जितना बुद्ध के सामने था। इसलिए हम देखते हैं कि बुद्ध का सारा उपदेश दूसरों की आलोचनापूर्वक ही देखा जाता है।

बुद्ध ने अपना मार्ग शुरू करने के पहले जिन पन्थों को एक-एक करके छोड़ा उनमें एक निर्ग्रन्थ पंथ भी आता है। बुद्ध ने अपनी पूर्व-जीवनी का जो हाल कहा है[१२] उसको पढ़ने और उसका जैन आगमों में वर्णित आचारों के साथ मिलान करने से यह निःसंदेह रूप से जान पड़ता है कि बुद्ध ने अन्य पन्थों की तरह निर्ग्रन्थ पन्थ में भी ठीक-ठीक जीवन बिताया था, भले ही वह स्वल्पकालीन ही रहा हो। बुद्ध के साधनाकालीन प्रारम्भिक वर्षों में महावीर ने तो अपना मार्ग शुरू किया ही न था और उस समय पूर्व प्रदेश में पार्श्वनाथ के सिवाय दूसरा कोई

---

१०. उत्तराध्ययन अ० २३.

११. वीरसंवत् और जैन कालगणना। 'भारतीय विद्या' तृतीय भाग पृ० १७७।

१२. मज्झिम० सु० २६। प्रो० कोशांबीकृत बुद्धचरित (गुजराती)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थ पन्थ न था। अतएव सिद्ध है कि बुद्ध ने थोड़े ही समय के लिए क्यों न हो पर पार्श्वनाथ के निर्ग्रन्थ-संप्रदाय का जीवन व्यतीत किया था। यही सबब है कि बुद्ध जब निर्ग्रन्थ संप्रदाय के आचार-विचारों की समालोचना करते हैं तब निर्ग्रन्थ संप्रदाय में प्रतिष्ठित ऐसे तप के ऊपर तीव्र प्रहार करते हैं। और यही सबब है कि निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के आचार और विचार का ठीक-ठीक उसी सम्प्रदाय की परिभाषा में वर्णन करके वे उसका प्रतिवाद करते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों का उपदेश काल अमुक समय तक अवश्य ही एक पड़ता है। इतना ही नहीं पर वे दोनों अनेक स्थानों में बिना मिले भी साथ-साथ विचरते हैं, इसलिए हम यह भी देखते हैं कि पिटकों में 'नातपुत्त निग्गंठ' रूप से महावीर का निर्देश आता है।[१३]

प्राचीन आचार-विचार के कुछ मुद्दे

ऊपर की विचार भूमिका को ध्यान में रखने से ही आगे की चर्चा का वास्तविकत्व सरलता से समझ में आ सकता है। बौद्ध पिटकों में आई हुई चर्चाओं के ऊपर से निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के बाहरी और भीतरी स्वरूप के बारे में नीचे लिखे मुद्दे मुख्यतया फलित होते हैं—

१—सामिष-निरामिष-आहार—[खाद्याखाद्य-विवेक]
२—अचेलत्व—सचेलत्व
३—तप
४—आचार-विचार
५—चतुर्याम
६—उपोसथ—पौषध
७—भाषा-विचार
८—त्रिदण्ड
९—लेश्या-विचार
१०—सर्वज्ञत्व

इन्हीं पर यहाँ हम ऐतिहासिक दृष्टि से ऊहापोह करना चाहते हैं।

---

१३. दीघ० सु० २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org